जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य प्रणीत

काका-विदुर

[खण्ड-काव्य]



प्रकाशक :

श्री तुलसीपीठ सेवान्यास

तुलसीपीठ आमोदवन, चित्रकूट धाम

जिला–सतना (म० प्र०)

जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य प्रणीत

काका–विदुर

[खण्ड-काव्य]



संवत् २०५६

आषाढ़ शुक्लपक्ष श्री गुरुपूर्णिमा

दि. २८-७-१९९९

द्वितीय संस्करण

प्रकाशक :

श्री तुलसीपीठ सेवान्यास

तुलसीपीठ आमोदवन चित्रकूट धाम

जिला सतना (म० प्र०)



प्राप्तिस्थान :

१. **श्रीगीताज्ञान मंदिर**
भक्तिनगर सोसायटी, राजकोट—२ (गुजरात)

२. **श्री तुलसीपीठ आमोदवन**
चित्रकूट धाम
सतना म० प्र०

३. **''श्री वसिष्ठायनम्'' रानी गली**
भूपतवाला, हरिद्वार उ० प्र०

मूल्य : रु. १०=००

द्वितीय संस्करण



प्रति—२५००



मुद्रक :
प्रभात प्रिंटिंग प्रेस
मथुरा

अनुक्रमणिका

॥ प्रकाशकीय ॥

वदनं प्रसाद-सदनं, हृदयं सदयं सुधामुचो वाचः ।
करणं परोपकरणं, येषां केषां न ते वन्द्याः ॥

जिनका दर्शनीय मुखारविंद प्रसन्नता का निवासस्थान है, अत्यन्त विशाल हृदय दयालु है, परम पावनकारी वाणी अमृत की वर्षा करने वाली है तथा जिनके जीवन के समस्त कार्य परोपकार से सुसंपन्न हैं, ऐसे मूर्धन्य महापुरुष को कौन वंदन नहीं करेगा ? वे सदासर्वदा सार्वकालिक सर्वजनों के वंदनीय हैं ।

इन्हीं महापुरुषों में से "काका विदुर" नामक, हिन्दी साहित्य में अद्वितीय खण्ड–काव्य के रचयिता, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज हैं ।

१९८० में श्रीराघवेन्द्र के अनुष्ठानार्थ पुष्कर के चालीस दिवसीय निवास–काल में, श्री रामभद्र की प्रेरणा से संस्कृत भाषा में काव्य रचना सामर्थ्य होते हुए भी, आपके हृदय में हिन्दी साहित्य सेवा की प्रस्फुरणा हुई ।

यद्यपि इसके पूर्व पू. आचार्यश्री ने गीर्वाण गिरा में विविध स्तवन, श्लोक तथा गीतों की रचना की है, तथापि इस क्रम में 'काका विदुर' पर हिन्दी रचना यह आपका स्तुत्य प्रयास है ।

यह १०८ कवित्त एवं सवैय्या छंदों में निर्मित खड़ी भाषा का खंडकाव्य है, इसके नायक श्री विदुर, जो एक दासी पुत्र होते हुए भी परम भागवत विषम परिस्थितियों में एक प्रशस्त संघर्षकर्ता दृष्टि गोचर होते हैं ! जिनका परिचय कविश्री कितनी चातुरी से देते हैं !

कृष्ण द्वैपायन का पावन उपायन जो,
दासीसुत रूप में पधारे यमराज सुर ।
पाले गये पाण्डु धृतराष्ट्र संग राजकुल में,
फिर भी रहा करुणाभक्ति परिपूर्ण उनका उर ।
सुलमा सी सुलभ वधू पाकर मुकुन्द पद,
प्रेम सुधा के लिए जो सतत रहा विधुर ।
कौन जानता था भावि भारत इतिहास इन्हें,
गर्व से कहेगा कृष्णचन्द्रका काका विदुर ॥

श्री विदुरजी, साहित्यिक मीमांसा के अनुसार, इस काव्य के धीर, प्रशान्त नायक हैं ! प्रस्तुत काव्य में कवि ने अपनी प्रतिभा को

सामाजिक संकीर्णता के दायरे से उन्मुक्त, स्वच्छन्द, सुमृदुल कल्पनाओं के रमणीक उद्यान में देखने का प्रयास किया है !

लोगों की दृष्टि में समाज की परिस्थितियों से अनभिज्ञ इन प्रतिभासम्पन्न कवि ने, अपने समग्र काव्य में जैसे सजीव चित्रण किये हैं, उनसे आपकी नैसर्गिक प्रतिभा एवं ईश्वरीय कृपा का ही अनुभव होता है । अतः इनसे अपरिचित व्यक्तियों को इनके बाल्यकालीन दृष्टिराहित्य पर संदेह होना स्वाभाविक है । पर भगवद् कृपा से आप को सब साध्य है, जिसका प्रस्तुत काव्य में भलीभाँति गान किया गया है ।

कवि के जीवन में नारी जगत के दो नाते अनुभूत हो सके हैं, माँ तथा बहिन का, जिस नाते का परिचय इस काव्य के दो वर्णनों से प्राप्त होता है। प्रथम श्रीकृष्ण एवं द्रौपदी संवाद में ।

भ्राता एवं भगिनी का परम पवित्र, भावग्राही, सुमधुर तथा निस्वार्थ नाते को कवि ने जिस भावुकता, कुशलता, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक मर्यादा के परमपावन परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है, सत्य ही वह वर्णन कवि के स्वानुभव का तो प्रमाणभूत है ही, पर साथ ही साथ इसे विश्व के साहित्य में एक नवीनतम रूप में देखा जा सकता है ।

द्रौपदी श्रीकृष्ण की छोटी बहिन, अपने केशों के लज्जा का भार अपने भैय्या कन्हैया पर अर्पित करती है । उधर श्रीकृष्ण भी बहिन को श्रद्धा की मूर्ति मानकर, इस नाते को सर्वतो विशिष्ट बताते हैं ।

क्या यह कवि का मधुर हृदयाकर्षक मनोवैज्ञानिक वर्णन भावी संतति को निर्मल प्रेरणा का स्रोत नहीं बनेगा ?

वैसे ही विदुर पत्नी सुलभा को श्रीकृष्ण के द्वारा काकी का मंजुल संबोधन दिलाकर, एवं पुत्रहीना उस महिला के शुष्क मरुमानस में वात्सल्य रस तरंगिणी का प्रस्तुतीकरण, कवि के व्यक्तित्व में भावुकता का संकेत करता है ।

तथा साथ ही साथ श्रीकृष्ण द्वारा उनके भावपूर्ण अर्पित किये हुए कदली छिलके का स्वीकार एवं सुलभा द्वारा बार-बार उनके मुखारविंद का चुम्बन तथा पुत्र भाव से त्रिलोकीनाथ को अपने आंचल में छिपाना, ये सभी भावुक वर्णन, कवि की स्वानुभूति एवं भारत-वर्ष की परम पावन मातृ संस्कृति की झाँकी का दर्शन कराते हैं ।

चक्रवर्ती सम्राट के संरक्षक होकर भी स्वयं श्रीकृष्ण का, दुर्योधन के सत्ता तथा उसके राजोचित छप्पन भोगों को ठुकराकर, निरीह विदुर के घर पधारकर भोली-भाली काकी के हाथ से केले के छिलके का सप्रेम खाना,

भगवान के भक्त-वत्सलता के साथ एक लोकनायक, समाज सृष्टा महापुरुष के संकीर्णता रहित परम निर्मल एवं विशाल हृदय का आदर्श प्रस्तुत करता है ।

भावविभोर सुलभा के वस्त्रविस्मृति पर, कवि की प्रस्तुत आध्यात्मिक भावभंगिमा, तथा प्रभु के पीताम्बर ओढाने में की हुई कवि की भक्ति एवं वेदान्त की भावनाओं से मिश्रित भावुक उत्प्रेक्षा, कवि की पटुता एवं उनकी सूक्ष्म दार्शनिकता, भक्तिमयता एवं काव्यकला-नैपुण्य को अभिव्यक्त करती है।

कवि का जीवन सिद्धान्तवादी होता हुआ भी दुराग्रहवादी नहीं है। यही इस दासीपुत्र विदुर के साथ जगदीश्वर श्रीकृष्णचन्द्र के सामाज्यस्य वर्णन से प्रतीत होता है ।

भाषा सरल, सुसंस्कृत, सारगर्भित तथा प्रभावपूर्ण है । कहीं-कहीं सामासिक संस्कृत शब्द एवं ब्रजभाषा के शब्द सहजतया आकर भी परम मृदुल भाव व्यंजक होने के कारण काव्य को रुचिकर बना देते हैं ।

काव्य भावमयी वर्णन शैली से परिपूर्ण है । इसमें सहजता श्लेष, रूपक, उपमा, यमक आदि अलंकार समुचित स्थानों पर प्रयुक्त हुए हैं । रसानुकूल भावनापूर्ण शब्दों की सर्जना ही इस काव्य का एक महत्वपूर्ण विषय है । इसमें शान्त रस की प्रधानता होते हुए भी यथास्थान नवोंरसों का दर्शन होता है ।

वर्णन में इतनी सजीवता एवं नैसर्गिकता है कि मानों कविश्री प्रत्येक परिस्थिति को अन्तरंग दृष्टि से देखते हुए अपनी कल्पना तूलिका से शब्दों को माध्यम बनाकर पाठक के सामने ठीक वही चित्र उपस्थित कर देते हैं।

मैं आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास रखती हूँ कि अन्य महत्त्वपूर्ण हिन्दी साहित्य सामग्री के रहते हुए भी यह लघुकाय काव्य, दूध में शक्कर की भाँति विद्वद्जनों को पूर्ण संतोष देगा ।

मैं पू. आचार्यचरण की बड़ी बहिन होने के नाते इस ग्रन्थ का सम्पादन करती हुई परम गौरव का अनुभव करती हूँ ।

इति मंगलमाशास्ते

डॉ. कु. गीतादेवी
प्रबन्धन्यासी
श्री तुलसीपीठ सेवा न्यास
तुलसीपीठ आमोदवन
चित्रकूट धाम, सतना (म. प्र.)

गुरु पूर्णिमा
२८.७.१९९८


वाचस्पति, श्री तुलसी पीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज
तुलसीपीठ, आमोदवन, चित्रकूट, जि. सतना (म.प्र.)

रामनन्दाचार्यो मन्दाकिनीविमलसलिलासिक्तः ।
तुलसीपीठाधीश्वरदेवो जगद्गुर्जयति ॥

अनन्त श्रीसमलङ्कृत सर्वाम्नाय श्रीतुलसीपीठाधीश्वर धर्मचक्रवर्ती
श्रीमद्जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य
स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज की जीवन जाह्नवी

नव जलधरनीलां वेदविख्यात शीलाम्
मुनिजनमननीयां योगिभिर्वन्दनीयाम् ।
कलित विमलकीर्तिं सर्वकामैकपूर्तिम्
स्वमनसि कलयेऽहं चिन्मयीं राममूर्तिम् ॥

जन्मस्थानम्–जौनपुर जनपदान्तर्गत शांडीखुर्दग्रामः जन्मतिथि षडधिक द्विसहस्त्रतमो वैक्रमाब्दः माघकृष्णैकादशी, स्थिरवासरः मकरसंक्रान्तिः खेष्टाष्दं १४-१-१९५०,

पूर्वाश्रम नाम – डा० गिरिधरलाल मिश्र,

तूर्याश्रम नाम – श्री चित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरः धर्मक्रवर्ती जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्यः ।

शैक्षणिक योग्यता – नव्य व्याकरणाचार्यः सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालये सर्वप्रथमस्थान प्राप्तकर्ता (यूनिवर्सिटी टापर) पी० एच० डी० (विद्यावारिधि) एवं डी० लिट् (वाचस्पति) ।

विशेष योग्यता – सम्पूर्णानन्द संस्कृतविश्वविद्यालय १९७३ शास्त्रीपरीक्षायां सर्वप्रथमस्थानं रामप्रताप शास्त्री स्वर्णपदकम् । सं० सं० वि० वि० १९७६ आचार्यपरीक्षयां सर्वप्रथमस्थानं पञ्च स्वर्णपदकानि, एकम् रजतपदकम् ।

१९७४ अखिल भारतीय संस्कृत प्रतियोगितां सांख्ये, व्याकरणे, समस्यापूर्तौ, श्लोकान्त्याक्षर्यां, न्याये, भारते सर्वप्रथम पुरस्काराः ।

सच्चाश्रम प्रयागे द्विःशास्त्रार्थे सर्वप्रथमस्थानम् ।

१९७६ वाराणसेय साधुवेला संस्कृत माहविद्यालये शास्त्रार्थे सर्वप्रथम स्थानम् ।

१९७६ अखिल भारतीय संस्कृत वादविवाद प्रतियोगितां सर्वप्रथमस्थानं कुलाधिपति स्वर्णपदकम् तत्कालीन उत्तर प्रदेश राज्यपाल डा० एम० चेन्ना रैड्डी द्वारा ।

१९८१ पी० एच० डी० विषयः 'अध्यात्मरामायणे अपाणिनीय प्रयोगाणां विमर्शः ।'

१९९७ डी० लिट् विषयः अष्टाध्याय्याः: प्रतिसूत्रं श्लोकानुवाद सहितं शाब्दबोध समीक्षणम् ।

रचना – चन्द्रशेखर चरितम् "लघुकाव्यम्" (१) मुकुन्दस्मरणम् प्रथमो भागः, द्वितीय भागः (२) प्रार्थना कुसुमाञ्जलिः (३) गीतकुसुमाञ्जलिः (४) आर्याशतकम् (५) राघवेन्द्रशतकम् (६) सीताशतकम् (७) मन्मथारिशतकम् (८) चण्डीशतकम् (६) श्री चित्रकूट शतकम् (१०) गणपतिशतकम् (११) स्वस्वरूप विमर्शः 'प्रकरण ग्रन्थः' (१२) श्रीरामभक्ति सर्वस्वम् (१३) प्रपत्ति शतकम् (१४) उपदेश नवनीतम् (१५) पश्चाशत् अष्टकानि (१६) गीतरामचन्द्रम् (१७) श्लोक मौक्तिम् (१८) सविशेषवादः 'प्रकरण ग्रन्थः' (१६) विवर्तगर्तावर्तः प्रकरण ग्रन्थ" (२०) निर्गुण-सगुण विवेकः (२१) विशिष्टाद्वैत दर्पणम् (२२) रामानन्द सिद्धान्त चन्द्रिका (२३) गीता तात्पर्यम् (२४) भगवद् गीतासु राघवकृपा भाष्यम् **(२५)** ईश-कठ-केन-प्रश्न-माण्डूक्य- मुण्डक-ऐतरेय तैतिरीय-श्वेताश्वतर-छान्दोग्य **-बृह**दारण्यक -तुलस्यूपनिषत् -कलिसन्तरण- सीतोपनिषत्-रामरहस्योपनिषत्-राधोपनिषत- **गोपाल**तापनीयोपनिषत्- पूर्वरामतापनीयोपनिषत्- उत्तररामतापनीयोपनिषत्सु- **ऊनविंशति**र्भाष्यग्रन्थाः (४६) ब्रह्मसूत्रभाष्यम् (४७) पाणिनि अष्टाध्यामी श्लोकानुवादः **(४८) पाणिनीया** अष्टाध्यायी **रामभ**द्रीयवृत्तिः द्विसहस्त्र पृष्ठात्मिका (४६) लघुरघुवरं **"खण्डका**व्यम्" यत्र न कापि दीर्घमात्रा (५०) भार्गवराघवीयं संस्कृत महाकाव्यम् एक **विंशति** सर्गात्मकं प्रतिसर्ग शतं-शतं श्लोकाः (५१) इदं प्रकाशितम् (५२) श्री राघवाभ्युदयं एकांकी नाटकम् (५३) **गंगामहिम्न** स्तोत्रम् (५४) ।

विशेष प्रतिभा– आंग्ल सहितासु भारतीयासु चतुर्दश-भाषासु साधिकार भाषणं, आशु काव्यरचना च, हिन्दी-अरुधन्ती महाकाव्य, मानस पर-सात प्रवचन ग्रन्थ, तुलसी साहित्य में कृष्ण कथा, काका विदुर, शबरी खण्डकाव्य ।

अलङ्करण – संस्कृत महाकविः धर्मचक्रवर्ती अन्ताराष्ट्रीय अलंकरण ।

समाजसेवा – राजकोट गुजरात में आधुनिकतम सुविधासम्पन्न सौ बिस्तरों का हास्पिटल, बालमंदिर, प्राथमिकशाला, ब्लड बैंक ।

चित्रकूट में – तुलसी प्रज्ञाचक्षु विद्यालय "आवासीय" तथा विश्व का सर्वप्रथम विकलांग विश्वविद्यालय निर्माणाधीन ।

व्यक्तित्व – वैयाकरण-वेदान्ती-साहित्यिक-नैयायिक-धर्मशास्त्री आशुकवि-**गद्य**गीत, नाटककार-संगीतज्ञ-ऋग्वेद से लेकर हनुमान चालीसा पर्यन्त समग्र भारतीय वाङ्मय के प्रखरवक्ता, संस्कृत के- घटिकाशतक-कुशल धर्माचार्य-निर्विरोध **चित्र**कूट तुलसीपीठ पर मूर्धाभिषिक्त जगद्गुरु रामानन्दचार्य पदासीन-नैष्ठिक **ब्रह्म**चारी-श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ-त्रिदण्डी वैष्णव संन्यासी-देश एवं विदेशों में भारतीय **संस्कृ**ति एवं राष्ट्रभक्ति के प्रखर व्याख्याता, श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव परम्परा के चतुर्थ **रामा**नन्दाचार्य ।

-- o --

कथावस्तु

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्यागजेन्द्रस्य का,
कूब्जायाः किमतीव रूपमतुलं, किंवा सुदाम्नो धनम् ।
वंशोको विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्,
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधव : ॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज द्वारा प्रणीत "काका विदुर" नामक इस लघुकाय ग्रन्थ में उपरोक्त श्लोक में नामतः संकीर्तित श्री विदुर जी पर भगवान् की अहैतुकी कृपा का पूर्ण दर्शन होता है ।

उक्त ग्रन्थ "काका विदुर" के नाम से लोगों की दृष्टि में आ रहा है, इसलिए कि भगवान् श्यामसुंदर श्रीकृष्णचन्द्र ने इनसे भतीजे का नाता जोड़ा ! इसकी कथावस्तु महाभारत के उद्योग-पर्व से ली गई है ।

इसमें प्रथम कतिपय छंदों में, कवि की दीनता एवं अपने इष्ट के शुभदर्शन की मधुर आकांक्षा तथा मूक क्रंदन के साथ अपने इष्ट श्रीरामभद्र के प्रति मधुर उपालम्भ दृष्टिगोचर होता है ।

अनन्तर कौरवों के षडयन्त्र से अभिभूत पाण्डव, अपने द्वादश-वर्षीय वनवास तथा एक वर्ष के अज्ञातवास को पूर्णकर, पुनः पाँच गाँव की संधि हेतु दूतरूप में भगवान् श्रीकृष्ण को, हस्तिनापुर भेजने का उपक्रम करते हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण को रथारूढ़ देखकर, व्यथितहृदया द्रौपदी साश्रुनयन से श्रीकृष्ण को अपने कष्टों से अवगत कराती है, तथा दुःशासन द्वारा कर्षित केशों की लज्जा की रक्षा का भार सौंपती है । इसके पश्चात् भगवान् कृष्ण ऐश्वर्य की मुद्रा में, अपनी लाडली बहन को आश्वासन देकर तथा भाई-बहिन के सुमधुर एवं निर्मल सम्बध की अद्वितीयता एवं विशिष्टता का श्रीमुख से ख्यापन करते हैं । और द्रौपदी आंसुओं से आर्द कुमकुम का टीका लगाकर, अपने भैय्या कन्हैया को विदा करती हैं ।

मार्ग में जाते हुए श्री कृष्णचन्द्रजी की बांकी झांकी एवं उनके रथ की मनोज्ञ छवि का वर्णन तथा काका विदुर व सुलभा काकी के प्रति श्रीकृष्ण के मन में उत्पन्न मधुर कल्पनाओं का वर्णन, कवि की वर्णन चातुरी एवं भावुकता का परिचायक है ।

अनन्तर गंगातट पर संध्या करके भगवान् श्यामसुंदर, दुर्योधन की राजसभा में पधारते हें । वहाँ दुर्योधन से किया हुआ, श्रीकृष्ण का निर्भीक, सारगर्भित एवं सत्य वत्सलता पूर्वक, सुस्पष्ट संवादक्रम कवि की सुस्पष्टता एवं सत्यक्रान्ति का द्योतक है ।

दुर्योधन की कटूक्ति सुनकर तथा विराटस्वरूप दर्शन द्वारा, उसके निग्रह प्रयास को विफल कर, भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण रथारूढ़ होकर, द्रोण, भीष्म आदि के निमंत्रण को ठुकराकर, विदुरजी की कुटी पर पधारे। यह पूर्वार्ध का कथासार है।

उत्तरार्ध में श्री विदुरजी की धर्मपत्नी परमभक्त हृदया सुलभा के रात आये मधुर सपने तथा परम उत्कंठा एवं विह्वलता से प्रभु की भक्तिपूर्ण प्रतीक्षा का अत्यन्त मार्मिक मनोवैज्ञानिक एवं हृदयग्राही सुमधुर चित्रण है।

माधव प्रतिक्षारत विदुर पत्नी, स्नानमिस भवन में प्रविष्ट होती हैं, तत्काल श्यामसुंदर उनके द्वार पर पधारते हैं। किवाड़ का खटखटाना सुनकर, वे परम आतुर होकर वस्त्र विस्मृत पूर्वक श्रीकृष्ण के चरणों में लिपट जाती हैं तथा ससम्मान उन्हें अपने भवन में ले आकर यथाविध भावपूर्वक पूजन करती हैं एवं श्यामसुंदर के अनुरोध पर विभोर होकर केले के छिलके खिलाने लगती हैं, और श्रीकृष्ण भी परभ भाव से उन्हें स्वीकार करते हैं।

इस प्रसंग का वर्णन भी कवि की परम अन्तरंगस्थिति ईश्वर निष्ठा, सूक्ष्मदर्शन एवं सुमधुर वाणीविलास का परिचय देता है।

इस प्रसंग में श्रीकृष्णचन्द्रजी के प्रति सुलभा काकी का मातृत्व एवं प्रेम पारखी श्रीकृष्णजी का उनके प्रति मातृवत्सलत्व वर्णन भी अतीव सरस रीति से किया गया है।

इस बीच दुर्योधन की दुर्नीतिका विरोध करने के कारण उससे अपमानित विदुरजी भी वहाँ पहुँच जाते हैं।

भार्या की इस भाव–विभोरता से युक्त, विषम परिस्थिति को देखकर, उनके द्वारा छिलके खिलाने का कारण पूछे जाने पर, सुलभा का मार्मिक उत्तर एवं बीच में ही श्रीकृष्ण का भावना पूर्व समाधान भी कवि के हृदय की निगूढ एवं प्रभु के प्रति अनन्य भावना तथा सरस कथन–शैली का द्योतन करता है।

अनन्तर श्रीकृष्ण को रोककर, निरस शब्द कहकर, पति के प्रति सुलभा का मधुर कटाक्ष, काव्य को भक्ति एवं सुमधुर दाम्पत्य विनोद से समलंकृत कर देता है।

तत्पश्चात् श्रीकृष्णचन्द्र भक्त दम्पति से विदा लेकर पाण्डवों के शिविर में आकर, क्षुब्धा बहिन कृष्णा को सान्त्वना देते हैं।

यही इस ग्रन्थ की संक्षिप्त कथावस्तु है।

डॉ० कु. गीतादेवी

।। काका-विदुर ।।

[खण्डकाव्य]

गौरीसुत गौरी गिरिजेश गुरुदेव जूँ के,
चरण सरोरुहों में शीश को नवाता हूँ ।
सीतारामचन्द्र के मनोज्ञ पदपंकजों में,
कतिपय भाव भरे अश्रु पुष्पों को चढ़ाता हूँ ।
दूर आज "गिरिधर" पदाब्जों से तुम्हारे नाथ !,
अपनालो यही रोके विनति सुनाता हूँ ।
काका विदुर के चारु चरित गान मिस
राम ! दीनबंधुता का तुम्हें स्मरण दिलाता हूँ ।।१।।

दीन मतिहीन मीन पातक पयोनिधि का,
पतितशिरोमणि के ऊपर रहावुँ मैं ।
जन्म को ही अंध गलबंध मोह से निबध्द्ध,
छंदज्ञानशून्य मंद मूरख कहावुँ मैं ।
रामभद्र ! आपकी कृपा की दिव्य प्रेरणा से
आपके जनों की मंजु गाथाओं को गावुँ मैं ।
काका विदुर पर हुई केशव कृपा गंगा में,
दोषयुक्त वाणी की सानंद नहलावुँ मैं ।।२।।

जानकीरमण करुणानिधान रामभद्र !,
दीनों पर सदा कृपासुधा बरसाते हो ।
तो क्यों मुझ अभागे को जन्मजन्मों से हे प्रभो!
अपने दरश हित सदा तरसाते हो ।
माना पिता गीध को औ काका बने विदुर तेरे,
शबरी से माता का नाता भी निभाते हो ।
अपने गुरुकुल में बिलोक जन्म "गिरिधर" का,
कृपा दक्षिणा में नाथ ! देर क्यों लगाते हो ।।३।।

रावण को मारने में राम ने उठाया चाप,
कृष्ण ने भी गोपीहित मुरली बजाया है ।
एक ने जटायु का पिता मान किया श्राद्ध,
एक बन भतीजा विदुर - गेह आया है ।
एक ने जननी मान भिल्लिनी के खाये बेर,
एक ने सुदामा जूँ का तंदुल चबाया है ।
राम ही है कृष्ण वस्तुतस्तु दोनों एक तत्व,
भक्त भावना में वेष भेद दर्शाया है ।।४।।

पंच महाभूत हेतुभूत भूति[१] भूषण भी,
जिनके पयोजपद प्रेम से विधूत[२] हैं ।
कृष्णख्यातिदाता[३] कृष्णभाग्य के विधाता[४],
कृष्ण कृष्णा[५] जू के भ्राता भक्त भाव अभिभूत हैं ।
सकल चराचर है प्रसूत जिनकी माया से,
वही नंदसुत आज अर्जुन के सूत[६] हैं
पूज्य पुरहूत[७] के सपूत वसुदेवजूँ के
देवकी के पूत बने पाण्डव के दूत हैं ।।५।।

पीड़ित बिलोक मनुजता को दैत्य शासकों से,
देवकी की गोद में जो आये ले नरावतार ।
गोपीमोद वर्धन गोवर्धन धरनहार,
खेल में किया जिन्होंने कंस आदि का संहार ।
गीताज्ञान दे के पार्थसारथी हो भारत मिस,
कूटनीति से उतारा मेदिनी का भूरि भार ।
उन्हीं श्यामसुंदर के पावन पदाम्बुजों में,
"गिरिधर" के हो अनन्त भृंगभूत[८] नमस्कार ।।६।।

कृष्णद्वैपायन[९] का पावन उपायन[१०] जो,
दासीसुत रूप में पधारे यमराज सुर ।
पाले गये पाण्डु धृतराष्ट्र संग राजकुल में,
फिर भी रहा करुणा भक्ति से परिपूर्ण उनका उर ।

---

१. भगवान् ! शंकर २. पवित्र ३. व्यासजी ४. अर्जुन ५. द्रौपदी ६. सारथी ७. इन्द्र ८. भ्रमर के समान ९. व्यासजी १०. भेट–बक्षिस

सुलभा सी सुलभ वधू पाकर मुकुन्द पद,
प्रेम सुधा के लिये जो संतत रहा विदुर ।
कौन जानता था भारत का इतिहास इन्हें,
गर्व से कहेगा कृष्णचन्द्र का काका विदुर ।।७।।
कौन जानता था इन्ही महाभाग्यशाली को,
स्वयं वासुदेव काका कहकर बुलायेंगे ।
कौन जानता था मान देने इस नरर्षभ को,
कृष्ण दूत बनके स्वयं हस्तिनापुर जायेंगे ।
भूप दुर्योधन के मेवा पकवान त्याग,
विदुर घर भोग कदली छिलके का लगायेंगे ।
कौन जानता था इसी गाथा के ही माध्यम से,
"गिरिधर" की गिरा प्रभु सुभागिनी बनायेंगे ।।८।।

लीलाधर लीला से सुप्रेरित मुकुन्दजी की,
कृपा ने साकार किया भक्त का मनोविलास ।
कपटी दुर्योधन के द्यूत षड्यंत्र विजित,
पाण्डवों का पूर्ण हुआ सावधि बिपिन बास ।
फिर भी न दाय देना चाहता था पायीभूप,
प्रबल हो रही थी वसुमति नररक्त प्यास ।
व्यास[१] लेके संधि का कृतार्थ करने विदुर जूँ को,
दूत हो प्रस्थित हुए स्वयं श्रीरमानिवास ।।९।।

सम्मति अजातशत्रु[२] सह चार पाण्डवों की,
भूमिका बना के संधि देय पंचग्राम की ।
युद्ध की अवश्यम्भाविता को अनुमान कर,
जान परिस्थिति प्रतिकूल विधिवाम की ।
करने सफल मंजु भावना मनोज कल्प,
लतिका को विदुर से सेवक अकाम की ।
रथारूढ़ हुए ज्यों हि साश्रु विधु मुखपर,
द्रौपदी के दृष्टि पड़ी सहसा हि श्याम की ।।१०।।

---

१. बहाना, २. युधिष्ठिर

करुणा की मूर्ति मानो खड़ी क्षुब्ध मुद्रा में,
संधि की प्रतिक्रिया से दीन हो रही थीं वे ।
कंपित लतासी स्फुरिताधर सरोष नैन,
अंबु से उरोज अंगराज धो रही थीं वे ।
केश कर्षणादि अवमानना का ध्यान कर,
ग्लानि वेदना से निज धैर्य खो रही थीं वे ।
बार बार भ्राता के मुखेन्दु को निहार निज,
नेत्र वारि ढार फूट-फूट रो रही थीं वे ।।११।।

पंकलग्न[१] धेनुसी निहारती प्रभुको खिन्न,
धर्मभीरु पाण्डवों से हो चुकी थीं वे निरास ।
हिमहत पद्मसा विवर्ण हो चुका था मुख,
स्वर्ण देह पर कर रही न शोभा विकास ।
तन मन बचन समर्पित प्रभु चरण,
भस्रिका सी ले रही थी उँचे-उँचे उष्ण स्वास।
तेजोहीन राहुग्रस्त शीतरश्मि रेखा-सी, वो
मंद-मंद आ रही स्वबंधु दीनबंधु पास ।।१२।।

देख दूर से ही आती कृष्णा को श्रीकृष्णचन्द्र,
कूद पडे स्यंदन[२] से त्याग के चरण-त्राण ।
बिकल गही प्रभुचरण लपटाय रही,
बोली पाहि पाहि कृष्ण केशव कृपानिधान ।
सुने द्रौपदी के बैन भरे जल जलजनैन,
धीरज के ऐन त्यागे धैर्य मर्यादाविधान ।
लम्ब बाहु से उठाये द्रौपदी को उर लाये,
पूंछे मुख कृष्ण के स्वपीतपट से सुजान ।।१३।।

पोंछ आँसु अंचल से द्रुपदकुमारी कहै,
यदुवंश नाथ ! मैं तो विपदाकी मारी हूँ ।
मुझसी अभागिनी को भगिनी का स्नेह दिया,
आपके स्वभाव पै मैं तन मन बारी हूँ ।

---

१. कीचड़ में फँसी हुई   २. रथ

लज्जा इन केशों की बचालो आज दीनानाथ,
बिनति क्या सुनाऊँ एक भिखारि दुखियारी हूँ।
नरकी हूँ नारी पै दुलारी हूँ नारायण की,
राखो या न राखो लाज भगिनी तुम्हारी हूँ ।।१४।।

स्वसा का विलोक धर्मसंकट क्षणार्ध में ही,
बिना पदत्राण द्वारका से चले आये तुम ।
राजसभा-मध्य मान मर्दा था दु:शासन का,
पट को बढा के पटवर्धन कहाये तुम ।
बन में उच्छिष्ठ शाक कणिका से तृप्त हुए,
ऋषि के कोपानल से हमको छुडाये तुम ।
मैं क्यों करूँ चिन्ता जिसका भ्राता भक्तचिन्तामणि,
लज्जा मेरी रखिबे को भगिनी बनाये तुम ।।१५।।

देवकी के नंदन निकन्दन भी कंसके हो,
नंद के दुलारे औ जसुमति के छैय्या हो ।
गौधन चरैय्या बालक्रीडा के करैय्या सब,
गोपीन सुख दैय्या नित्य रास के रचैय्या हो ।
आनंद सरसैय्या भक्त मोद के बढैय्या,
"गिरिधर" से जनपै कृपासुधा बरसैय्या हो ।
दु:ख के हरैय्या दुष्ट दर्प के नसैय्या,
कृष्णा लाज के रखैय्या मेरे एक मात्र भैय्या हो ।।१६।।
छोटी हूँ बहन छोटी बुद्धि छोटी दृष्टि मेरी,
अँचल पसार छोटी मांग तुमसे आज है ।
मेरे बड़े भ्राता सब संत सुख दाता,
भक्त भाग्य के विधाता औ गरीब के निवाज है ।
लौकिक व्यवहार में मैं नारी नाथ ! पाण्डवों की,
मन के अधीश्वर पै मेरे ब्रजराज है ।
केशव सम्मुख धर केशको सुकेशी कहें,
केशिरिपु ! केशों की तुम्हारे हाथ लाज है ।।१७।।

कृष्णा के सप्रेम सुधापागे बर बैन सुने,
बारिज विलोचनोमें उमड़ी सलिल धार ।

१. जल

एक बार भाव से बिलोक भगिनी की ओर,
मौन भाव में ही दिया सर्व वांछितोपहार ।
पोंछके पीताम्बर के छोर से दृगश्रुओं को,
फेर सिर कंजकर भूमि के हरणभार ।
बोले वाणि मधुर पवित्र गंगापुर[१] से भी ।
शीतल सुकोमल तुहिन[२] -रश्मि सुधासार ।।१८।।

कृष्णे ! धरातलपे रहते हुए कृष्णके भी,
यों ही निरुत्साह क्यों निराश आज होती हो ।
बीरस्नुषा[३] वीरपत्नी वीरमाता होके तुम,
मंगलके समय अधीर ज्यों क्यों रोती हो ।
याज्ञसेनी ![४] युद्धयज्ञकी पवित्र बेलामें भी,
मंगल के बाधक क्यों अश्रुबीज बोती हो ।
होकर बहन भी त्रिलोकशोकमोचन की,
"भगिनी" अदम्य धैर्यराशिको क्यों खोती हो ।।१९।।

जब तक रहेंगे शुभे ! प्राण इस शरीर मध्य,
तब तक तुम्हारी मैं प्रतिष्ठा बचाऊँगा ।
रोम रोम करूँगा निछावर तेरे चरणों में,
जीवन पर्यन्त इस नाते को निभाऊँगा ।
केश कर्षणादि अपमानों की प्रतिक्रिया में,
आततायियों को जमलोक मैं पठाऊँगा ।
जब तक न लूंगा प्रतिशोध तेरी आँसुओं का ।
तब तक कृष्णे ! न विश्रान्ति शांति पाऊँगा ।।२०।।

ताण्डव करूँगा चण्ड भीषण प्रलयकारी,
शत्रुओं का मान मद धूलमें मिलाऊँगा ।
युद्ध अभिमानी दुष्ट शासकों का गर्व हर,
धार्मिक जनों की मनः कलिका खिलाऊँगा ।
रहके निःशस्त्र भी समस्त महाभारत में,
पाण्डव विजय वैजयन्ती फहराऊँगा ।
राखी की चुकाऊँगा सुदक्षिणा दुःशासन के,
भुजरक्त से ही तेरे केश को बंधाऊँगा ।।२१।।

---

१. गंगाजी का प्रवाह २. चन्द्रमा ३. वीर की पुत्रवधु ४. द्रोपदी

नाते या जगत में अनेक हैं महत्वपूर्ण,
सकल सदोष किन्तु स्वार्थसे ही साने हैं ।
भाई औ बहन का एक नाता है परम-पूनीति,
इसको पुराण शास्त्र वेद भी बखाने हैं ।
भ्राता की कुशलता बहन की संजीवनी है,
भ्राता के समस्त भाव बहन पै बिकाने हैं ।
दोनों का परस्पर अनन्त निर्मल प्रेम,
सदा सनातन "गिरिधर" पहिचाने हैं ।।२२।।

भ्राता के विचार में बहन है श्रद्धा की मूर्ति,
पूर्ति मनोरथोंकी सुमंगलकी खान है ।
बहन अधिष्ठात्री बन सदा रहे अविच्छिन्न,
सात्विक सुबंधुको यूँ होता नित्यभान है ।
बंधुकी सुश्रुषा आयु विद्या सुप्रसन्नताही,
स्नेहिल भगिनी का जीवनधन प्राण है ।
कैसा दिव्य नाता यह भ्राता औ बहन का हा!!!
"गिरिधर" को स्मृतिसे कर होती पुलकान है ।।२३।।

रामअवतार में निभाया भ्रातृप्रेम मैंने,
कृष्ण जन्म में भगिनीप्रेम को निभाया है ।
वहाँ लिया भरत के हित पादुकाअवतार,
यहाँ तेरे लिये वस्त्र स्वयं को बनाया है ।
वहाँ ठुकराया बंधुहित राज्यसत्ता मैंने,
भगिनीहित यहाँ पै राजा ठुकराया है ।
भायी भ्रातृवत्सलता राघव धनुर्धर को,
"गिरिधर" को भगिनी वत्सलत्व भाया है ।।२४।।

निखिल सिद्धान्त धर्मसार धन से गर बचन,
श्रवण में जाते ही सकल कलाधाम के ।
द्रौपदी का गया शोक शिखी[१] ज्यों हुई विशोक,
चरण में नाई शीश श्याम आप्त काम के ।

---

१. मयूरिणी

आनन्द में कुमकुम को आर्द कर दृगश्रुओं से,
टीका किये भाल पे विलोचनाभिराम के ।
शीघ्र ही दिखाना मुखचन्द्र मेरे भैय्या कृष्ण !
मंगल यों भाषे बहुत हेतु घनश्याम के ।।२५।।

द्रुपद सुता को धैर्य दे, कह वर बचन गंभीर ।
चले हस्तिनापुर मुदित, कृष्णचन्द्र यदुवीर ।।२६।।

जात चले गजसाह्वय[1] को बर,
स्यंदन देवकीनन्दन सोहे ।
मानों पुरन्दरवाहन[2] पै,
बरसा को पयोधर ज्यों मन मोहे ।
शान्त मुखाम्बुज मुद्रा मुकुन्दकी,
भावति है जिय ध्यान में जो हे ।
बांके बिहारी की बांकी ये झाँकी,
सदा जन के भ्रम-भेद अपोहे[3] ।।२७।।

सित नीली औ पीली हरीली सु झालर,
स्यंदन के चहुँ ओर बिराजै ।
तेहि मध्य मुकुन्द सुखासनासीन,
सदा जो जनों के हृदालय राजै ।
सरसीरुह नैन सुमंगल ऐन,
जिन्हें लखि मैंन[4] करोरन लाजै ।
बर व्योम पुरन्दरचाप[5] के बीच,
रसाल तमाल मनो अति भ्राजै ।।२८।।

परम प्रसन्नमन प्रेम कंटकित तन,
भक्त भयभंजन प्रभु चले हास्तिनपुर ।
चपल कुरंग हुँ से तीखे है तुरंग जुड़े,
धन्य धन्य जो हैं धरे धरणिधर के धुर ।
अति अकिंचन भक्त भावुक से मिलने को,
प्रभुको उत्सुक बिलोक बरषे प्रसून सुर ।
काका विदुर को निजअन्तर छिपाने हेतु ,
तरस रहा है श्यामसुंदर का विभु उर ।।२९।।

---

१. हस्तिनापुर २. ऐरावत ३. नष्ट कर दे ४. कामदेव ५. इन्द्रधनुष

सोचते विमोचते हैं नीरज नयन नीर,
यदुवंश बीर की शरीर सुधि खो गई ।
मानस पटल पर प्रभु अधिदेवता सी,
काका विदुर की स्मृति चित्रित सी हो गई ।
एक भी निमेष उन्हें वर्ष सा प्रतीत होता,
भक्त से मिलन हेतु त्वरा है बढ़ी नई ।
मानो गजतारन गजरक्षक गजपुर[1],
"गिरिधर" लखे चले रीति करुणा मई ।।३०।।

जैसे भक्तध्रुव को प्रबोधने चले थे नाथ,
वैसे विदुर के हित चले गजपुर ओर ।
मंजुल उमंग भरि भावना तरंगो में, ही
गोते खा रहे थे राधा मुखचन्द्र के चकोर ।
अचल उछाल उर वारिवाह[2] सा लसित,
जन चित चोर हो चुके थे भाव में विभोर ।
आनंद हिलोरें में था पीताम्बर छोर गीला,
सजय नयन कोर राजे नंद के किशोर ।।३१।।

आज हरि विरह तप्त भक्त काका विदुर को,
लोचन जलों से सींच-सींच के जुडाउंगा ।
लोक वेद बहिर्भूत पूत उस महात्माको,
आज भव्य त्रिभुवन भूषण बनाउंगा ।
परम वैष्णव दंपत्ति की भक्ति भागीरथी,
विमल प्रवाह में सहर्ष मैं नहाउंगा ।
प्रेम का हूँ भूखा रूखा शाकपात आज,
सुलभा काकी के हाथ मैं तो पेट भर खाउंगा ।।३२।।

जिसमें छिपी है वेद विद्यायें कलाएँ वह,
सुलभा के अंचल में स्वयं को छिपाउंगा ।
आजदासी पुत्र के पवित्र अंक में भी बैठ,
भुवन को भागवत रहस्य बताउंगा ।

---

१. हस्तिनापुर २. बादल

जाता नहीं ध्यान में कदापि सनकादिकों के,
विदुर की कुटि में सहज ही में जाउंगा ।
दुर्लभ जो ब्रह्मसुख मुनि यति योगियों को,
उसे काकी सुलभा को सुलभ कराउंगा ।।३३।।

गोद में बिठाके मुझे माता जशोदा ने जैसे,
भावपूर्ण माखन औ मिसरी खिलाया था ।
ब्रज की ग्वालिनियों ने गाल पे गुलुचे दे दे,
प्रेम से पुनीत नवनीत को चखाया था ।
भोरी गोप नारियों ने गौवों ने स्वपुत्रमान,
जैसे पय पावन सुप्रेम से पिलाया था ।
आया वह औसर सहज मेरे लिये आज,
मेरे बाल्यकाल्य में जो गोकुल में आया था ।।३४।।

भक्त के मिलन हित मधु मनोरथों द्वारा,
आये भक्त वस्य अविलम्ब भागीरथी तीर ।
करके प्रणाम अभिषेक मुदित माधव,
देख निज चरण सरोज जात दिव्य नीर ।
अवय सारथी के संग पान के पावन पाथ[1],
खोया मार्गश्रम सब शीतल हुआ शरीर ।
लोक संग्रहार्थ स्वयं वेद लक्षभूत ब्रह्म,
संध्या वंदनादि किये आप वृष्णिवंश वीर ।।३५।।
पूरन काम त्रिलोक ललाम,
सुने घनश्याम गजाह्वय[2] आये ।
बाल युवा नर नारी सबै,
यदुनाथ को रूप बिलोकन धाये ।
गोल कपोलों पे कुंडल लोल,
बिलोचन लाल लसै जलजाये ।
मानहुँ कोटि अनंगन[3] की छबि,
माधव अंगनिमें सिमटाये ।।३६।।

१. जल २. हस्तिनापुर ३. कामदेव

एक कहे अति सुंदर वेष,
इन्हें विधि ने निज हाथ बनाये ।
एक कहे नर भूषण रूप में,
आज यहाँ कोउ देव सिधाये ।
एक कहे शर चाप बिहीन,
शरीर धरे रतिनाथ सुहाये ।
कोउ कहे "गिरिधर" को प्रभु पार्थ को,
दूत व्है राधिका रंजन आये ।।३७।।

आये प्रभु दूत बन हास्तिनपुर परिशर में,
लाने को स्वपक्षमें अशेषकलाधामको ।
कुटिल दुर्योधनने संभार स्वागतके सजाये,
देने हित प्रलोभन अनंत आप्तकामके ।
भीष्म द्रोण कर्ण विदुर आदि सचिवोंको लेके,
आया वह मिलने सानंद घनश्याम को ।
नहीं पहचान पाया श्रीमदान्ध नीच भूप,
माया से निगूढ[१] नरवेश आत्माराम को ।।३८।।

मिले प्रभु सबसे उपेक्षा पूर्ण भावना में,
किसी उपहार पर भी डाली नहीं निज दृष्टि ।
उसे क्या लुभाये कोई क्षण भंगुर जग पदार्थ,
अपने संकल्प से ही काल की करता जो नष्टि ।
भीष्म द्रोण आदि थे प्रतीक्षा में विकलता से,
किस पर आज होगी कृपालुकी कृपा सुवृष्टि ।
किन्तु एक कोने में अकिंचन खड़ा था भक्त,
जिसपे हुई प्रभु की भाववश्यता सरस सृष्टि ।।३९।।
देखा श्रीविदुर ने भी अभूतपूर्व झाँकी वह,
पूँजी भूत सी जो विधि सकल कला की थी ।
श्यामल शरीर पर बिराजता था पीतपट,
नील नीरद पे छबि अचला[२] चला की थी ।

१. छिपे हुए २. बिजली

सुधाके समान मंद मुसुकान अलकान,
की छटान ज्वाला मानो हर नहीं हलाकी थी ।
भावुक उर अंतरमें सुप्रेम की विभावना सी,
रचती संस्फूर्ति मूर्ति नंद के लला की थी ।।४०।।

कंचन किरीट शीश मीनकेतु केतु से,
सिहरते कपोल कल कुंडल छटान की ।
भक्त भीति मोचन नव कंज से बिलोचन लोने,
भ्रकुटी पै छकी छबि मनसिज कमान की ।
सुंदर चिबुक रद अधर आम्र पल्लव से,
आनन शशांक शोभा मंद मुसुकान की ।
जीवन है धन्य उस नरोत्तम का जिसने सकृत[1]
स्वप्न में भी झाँकी बाँकी झाँकी भगवान की ।।४१।।

सिंह कंध बलसीम कुंजरेन्द्र सुंड बाहु,
दंड भग्न जिसने की थी शक्ति क्रूर कंस की ।
इन्दिरा निवास उर कंबु[2] ग्रीव[3] सुघर नाभी,
सुषुमा मनोज शंभु मानस के हंस की ।
कटि तट पै पीतपट लसें बाल रवि समान,
भूषण की झाँकी श्रुति प्रथित प्रशंस की ।
चरण सरोज मृदु नखमणि चन्द्रिका को,
"गिरिधर" निहार चन्द्रवंश अवतंस की ।।४२।।

उरमें आनंद अपार करे विदुर भी विचार,
मुझको क्या दीनबंधु काका कभी कहेंगे ?
माधव की आनन मृगांक सुधा पी पी के,
मेरे प्यासे नयन क्या कदापि तृप्ति लहेंगे ?
निखिल ब्रह्मांडाधीश आके मेरी कुटिया में,
कभी क्या विशुद्ध भक्तवश्यता निर्वहेंगे ?
दर्शन क्या देंगे कभी मुझे रुक्मिणी के रमण
"गिरिधर" क्या मेरे दाव दारिद को दहेंगे ।।४३।।

---

१. एकबार २. शंख ३. गला

जाना भक्त वत्सल ने विदुरजू की भावना को,
उनका मौन आवाहन किया मुदित अंगीकार ।
कहा मौन भाषणमें आउंगा तुम्हारे गेह,
खाउंगा सप्रेम आपका मैं शाक उपहार ।
ठुकराके चरणों से निमंत्रण धृतराष्ट्र सुतका,
करूँगा, स्वीकार आपका ही अतिथि सत्कार ।
हलधर के भैय्या ! दास मोद के बढैय्या !
हे कन्हैया ! तेरे शील पर है "गिरिधर" भी बलिहार ।।४४।।

भोजन हित श्यामसे अनुरोध किया कुरूपति ने,
निर्भीक भाव से प्रत्युत्तर प्रभु ने दिया ।
राजन ! दो दशाओं में अवांछनीय स्थान पर भी,
प्राय: आतिथ्य भोजनादि जाता है लिया ।
भूखा भीतिग्रस्त या तो प्रियतम हो मानस का,
तभी होती सह्य है समाज की तिरस्क्रिया ।
न तो मुझे प्यारे तुम न मैं हूँ भूखा भीत तुम से,
अत: मुझे नहीं है स्वीकार तेरी सत्क्रिया ।।४५।।

सुनो देके कान अब संदेशा भूप ! पाण्डवों का,
उन्हें अब निरर्थक तुम विपदा सहावो मत ।
पांच गाँव देकर संधि करलो नृप युधिष्ठिर से,
उनके क्रोधानल को अधिक भडकावो मत ।
समधी निज मान तुझे दूत बनके आया तात !,
मेरी इस बातको नृपाल ! ठुकरावो मत ।
पृथवी की सोणित[1] पिपासा को बढ़ावो मत,
पुण्य कुरुक्षेत्र को स्मशान भू बनाओ मत ।।४६।।

वक्र कर भौंह बोला पापी दुर्योधन तब,
केशव ! तुझे राजनीति का न रंच मात्र ज्ञान।
नाचे गोपवधूसंग नवनीत को चुराया,
राज परंपरा का कहो क्या तुझे पहचान ।

---

१. रक्त

सुई की भी नोंक भर न दुंगा भूमि पाण्डवों को,
होने दो अखण्ड क्षत्रियों का घोर घमासान ।
जानकर निरस्त्र तुझे बंदीगृह भेजता हूँ,
देखता हूँ कैसा है तुम्हारा शांति कथाह्वान ।।४७।।

रोष विकटाक्ष प्रलयंकर कृतान्त यादवेन्द्र
मनः सिन्धु में भी आया क्रोध महावेश ।
प्रबल प्रचंड भुजदंड नसें चटक उठीं,
कांप वसुधा सब डगमगे दिग्गज दिशेश ।
प्रकटा विराटरूप विपुल सिर मुखांघ्रि बाहु,
देख जिसे हतायुष्य हो गये सभी नरेश ।
बंधन प्रयास भी विफल हुआ कुरुपति का,
मानो अभी हो गया पराजय का ही श्रीगणेश ।।४८।।

सुनो मेरी घोषणा सदस्यो कुरुनायक के,
पाण्डव दुर्योधन से युद्ध अब रचायेंगे ।
सोणित की तरंगिणि[१] बहेगी कुरुक्षेत्र मध्य,
लेने मुंडमाला मुंडमाली यहाँ आयेंगे ।
तेरा सर्वनाश होगा दलबल समेत भूप !
गीदड़ औ श्वान गृध्द्ध देहमांस खायेंगे ।
दिव्य दृष्टि द्वारा संजय भावि महाभारत का,
अंध धृतराष्ट्र को इतिहास सब सुनायेंगे ।।४६।।

रणचंडी नाचेगी प्रसन्न रणबसुन्धरापे,
जोगिनी बेताल भैरव उग्रगीत गायेंगे ।
लोथों से ढकेगी भूमि बीर ललनाओं के,
सिंदुर सुहाग राग रक्त से धुल जायेंगे ।
जीत होगी पाण्डवों की तुम्हें हत रणस्थल में,
भीमसेन विजय वैजयन्ती फहरायेंगे ।
पार्थका मैं सारथी कराउंगा उन्हीं की जीत,
एक छत्र राज्य धर्मराज भू का पायेंगे ।।५०।।

---

१. नदी

घर्षित कर कुरुराज को, रिपुबल का कर अंत ।
विदुर गेह की ओर प्रभु, रथ चढि चले तुरन्त ।।५१।।

सुलभा को आज रात सपना सुहाया आया,
उनकी गोद बैठा मानो एक भव्य बालक है ।
बालक है जिसके त्रिलोक के पितामह विधि,
लोक परलोक का जो एक मात्र पालक है ।
पालक मुनिन्द्र संत वृंदगौ भूमिका जो,
चरण प्रसन्न भृत्य जनों का संभालक है ।
भालक समान जो खलों का प्रबल घालक है,
कंस का का सालक[1] "गिरिधर" का निभालक है ।।५२।।

अंक में आसीन कर कंज से हिला के शीश,
काकी ! मैं बुभुक्षित कुछ खिलादे कह रहा था वो।
सुधा सानी वाणी से कर माध्यम कर्ण कुंहरों[2] को,
जन्म जन्मान्तरों की व्यथा को हर रहा था वो।
पुत्र सुख वंचित उस शुष्क मरु मानस को,
वात्सल्य रस गांगजल से भर रहा था वो ।
जिस सुख की लालसा में लटु है ब्रह्मादि उसे,
सुलभा के सन्मुख हो सुलभ कर रहा था वो ।।५३।।

चौतिनी छबीली उसकी चितवन् रसीली वह,
रंगीली चाल से गजशावक[3] मतवाला था ।
काला कजराला घुंघराले बाल वाला भाल,
मंजु तिलक वाला सब भाँति ही निराला था ।
लिये भाव प्याला कलकंज नेत्रवाला मानो,
सुलभा के शीश पर ठगोरी सी डाला था ।
ओढे हुए पीला सा दुशाला क्या सुलभा को,
सपने में मिला सच नंद का ही लाला था ।।५४।।

जगी पगी प्रेम में लगी बिलोकने समत्र[4]
पूर्व दृष्टि झाँकी पर उसे न दिखाई पड़ी ।
हक्की बक्की रहीं मणिहीन भोगी[5] भामिनी सी,
होने लगी उनके लोचनों से अश्रु की झड़ी ।

---

१. नाश करने वाले २. छिद्र ३. हाथी का बच्चा ४. सर्वत्र ५. सर्पिणी

हो गई बेचैन नैन राजीवनैन पास रैन,
मध्य ऐन छाड हुई द्वार पर ही जा खड़ी ।
"गिरिधर" प्रतीक्षारत भुवनविमोहन के,
भाव मुग्ध दारु[१]-पुत्रिका सी रह गई अड़ी ।।५५।।

क्षण भर के लिये जाती भौन कुछ कार्यवश,
क्षण में सुव्यग्र आके बाहर निहारती ।
कर करके स्मरण कृपालु की कृपालुता का,
स्नेह में विभोर देह दशा को बिसारती ।
आयेंगे अवश्य श्याम आज मेरे धाम अतः
आँचल से दौड़ पौर[२] खौर[३] को बहारती[४] ।
आके चले जायें न यशोदा नंदवर्धन कहीं,
एक टक लगायें न निमेष को निवारती ।।५६।।

कभी भावमत्त होके गाती और नाचती थी,
कभी श्यामहेतु वे सजाती भव्य आरती ।
कभी प्राणप्यारे को नैवेद्य पवाने के लिये,
थोड़े पड़े कदली के फलों को सुधारती ।
कभी चौकपूर भव्य आसन लगाती और,
कभी पूजा हेतु दिव्य थाल को संवारती ।
कभी हो विकल त्यक्त वत्सा धेनु जैसी रोती,
कृष्ण कृष्ण ! केशव ! गोविन्द ! कह पुकारती ।।५७।।

(गीत)

माधव मुझे कब मुख कमल दिखाओगे ।।
करोगे साकार कब सपना मधुर मेरा,
कब काकी कहके बुलाओगे ।
पावोगे नैवेद्य कब मेरे हाथ गोपीनाथ,
कब बड़भागिनी बनाओगे ।।१।।

---

1. कठपुतली 2. दरवाजा 3. गली 4. झाड़ना

राधिकारमण बिना मोल की मैं तेरी चेरी
कब तक प्रभो ! तरसाओगे ।
शारद राकेश मुख का दिखला के नाथ
मानस कुमुद विकसाओगे ।।२।।

चैन नहीं आती रैन रोते बीत जाती मेरी
कब तक मुझे तढ़फाओगे ।
"गिरधर" प्रभो ! कब करोगे कृतार्थ मुझे
सूनी कुटियाँ में कब आवोगे ।।३।। ।।५८।।

यदुवंश दिनेश के चिन्तन से,
मनोभाव सरोरुह भी सरसे ।
सरसे तनु रोमलता चय भी,
दृग् सावन के घन से बरसे ।
बरसे सुर पुष्प बिलोकन को,
प्रभु के अति "गिरिधर" भी तरसे ।
तरसी अँखियाँ तरसी सुलभा
पय चू चला पीन पयोधर से ।।५९।।

सुलभा की थी आज की रात शुभा,
औ प्रभात भी आज सुहावन था ।
मलयानिल भी उनके पद छू,
छू के हो रहा आज सुपावन था ।
सुरभाग्य सराहते थे उनका,
सगुनों का समूह लुभावन था ।
क्योंकि आने को पाहुन रूप में आज,
उन्ही के यहाँ भवभावन था ।।६०।।

फडके भुज नैन बाम बाम[1] विदुर बामा के,
फडके उतै श्याम अंग दक्षिण सुहाये हैं ।
काकी को मिलने के उत्सुक अति दीनबंधु,
माने पुत्र हेतु पलक पांवडे बिछाये हैं ।

---

१. सुन्दर

सुलभा का हृदय भ्राजै वात्सल्य सिन्धु पूर्ण,
कृष्ण स्वयं करुणा के नीरद बन आये हैं ।
देख के परस्पर पुण्य प्रेम मयि भावना को,
"गिरधर" कृतकृत्य घनश्याम कीर्ति गाये हैं ।। ६१।।

माधव की प्रतीक्षा में निरत बडभागिनी को,
जगती व्यवहार का किंचिदपि न भान था ।
तत्त्व तत्त्व तन्मय था चिन्मय प्रेम मधुमय था,
मन भी प्रणय मय था तन का न ध्यान था ।
स्नान मिस बिरह वह्नि ज्वाला बुझाने आई
घर में उरान्तर में श्याम का आह्वान था ।
उधर व्योम मध्य गया दिनकर का यान इधर,
द्वार मध्य आया वृष्णिदिनकर का यान था ।।६२।।

एक सोहै अम्बर एक कलित पीताम्बर,
एक प्राचि में उदित एक देवकी से पाया जन्म ।
एक श्वेत एक श्याम एक से श्रीहीन चन्द्र,
एक का तो चन्द्रकुल विकास ही है मुख्य धर्म ।
एक जड जलजपति एक संत कंज गति,
एक दैत्य भीत एक का है दैत्यनाशकर्म ।
एक का विश्राम उच्च अस्ताचल चरम शिखर,
एक का निवास नीच विदुर जी का परणसद्म[1] ।।६३।।

होकर सर्वज्ञ स्नेहवश भूले पंथ प्रभु,
केसी मद मादकता प्रेममदिरा की है ।
मोचते लोचन नीर कंटकित[2] श्यामल शरीर,
भाव से गंभीर दशा यशोदा लला की है ।
कंज प्रात तुहिन जैसे बदन उपर स्वेद बिन्दु,
"गिरिधर" निहार कैसी मधुर बाँकी झाँकी है ।
पूँछे प्रभु बालवृन्द पक्षि शुक-सारिका से
कौन भौन काका का औ कहाँ मेरी काकी है ।।६४।।

---

१. पर्णकुटी २. पुलकित

नीरव एकान्त शान्त दान्त मुनि संत जुष्ट,
भावना प्रधान भव्य भागीरथीतीर था ।
गंगा के उत्तंग तर तरल तरंगों से
सींचता सदैव जिसे मलय समीर था ।
शिव जटा विपिनचारी अच्युत चरणच्युत,
जहाँ लहराता मंजु मंदाकिनी नीर था ।
वहीं जनकामधेनु रेणुका से रूषित
द्रुमावली निलीन दास दम्पत्ति कुटीर था ।।६५।।

जहाँ जन्म जन्मों की जनार्दन पदारविंद,
भ्रमरी शीश[1] कबरी[2] अमरी सी सुखखानी थी।
खानी सद्गुणों की सारी रैन ही सिरानी,
भूमिजानि[3] की प्रतीक्षारत बानी प्रेम सानी थी।
सानी भव्य भाव से औ ठानी प्रीति गोपी जैसी,
वंशीपाणी पाणि बिन मोल ही बिकानी थी ।
कानि[4] से भी दूर अविदूर प्रभुपद से प्रेम,
चूर भय-वासना से दूर विदुरानी थी ।।६६।।

पाके सुसंकेत करुणासमेत श्रीनिकेत
आये करकंज से कपाट खट खटाये जब ।
सुलभा के सूखे अति मंजुल मरु मानस में,
करुणाघनकृपावारिधारा बरसाये तब ।
काकी कह बुलाये बैन अमी जन जाये आज,
हो गये साकार मधुर सपने सुहाये सब ।
भूर भाव भाये जो कि यज्ञ में न आये कुरु-
राज भोज ठुकराये विदुर द्वार आये अब ।।६७।।

सुन सुन्दर बानी सुधा रस सानी,
सयानी उठी अति आतुर धाई !
नीबी[5] खसी कटि से पट की,
न रही सुधि देह दसा बिसराई ।

---
१. जूडा २. देवी ३. पृथ्वी के पति श्रीकृष्ण ४. मर्यादा ५. साड़ी की गांठ

देखि व्रजेश को मोहन रूप,
रही न हिये महँ प्रीति समाई ।
भामिनी चेतना शून्य छडी सी,
रही पद पंकज में लिपटाई ॥६८॥

पावन प्रेम-पयोनिधि में,
सुलभा मानो मायिक वस्त्र डुबाये ।
केशव ने कृपया उनको तब,
भक्ति सुपीत दुकूल उढ़ाये ।
भूमि पडी लकुटी सी सती,
नहीं जागती कोटिन भाँति जगाये ।
दुर्लभ योगिजनों के लिए जो,
वही सुलभा के उरन्तर आये ॥६९॥

प्रेम-पयोधि निमग्न हुए प्रभु,
देख विचित्र परिस्थिति वाकी ।
नीरजनैन से नीर ढरें,
उनकी मति प्रेम सुधा से थी छाकी ।
श्यामल गात प्रफुल्ल तमाल सा,
केसी थी भाव भरी वह झाँकी ।
दुर्लभ जो मुनि मानस को उन,
केशव को सुलभा मिलि काकी ॥७०॥

श्याम ने पाणिसरोरुह से,
उनको महि से बल देके उठाया ।
अंबुज अंबक[१] अंबु से सींच के,
बार हि बार गले से लगाया ।
भाव समाधि विचेष्ट सती को,
सुधा सम बैन के द्वारा जगाया ।
काकी हूँ प्रात से भूखा मैं आज,
तुम्हारे यहाँ कुछ खाने को आया ॥७१॥

---

१. नेत्र

कह के यों कृपानिधि ने उनके,
पद पंकज में निज शीश नवाया ।
तब काकी ने कंपित कंज करों से,
मुकुन्द को शीघ्र गले से लगाया ।
फिर चूम मुखाम्बुज को उसने,
निज अंचल में भर भाव छिपाया ।
अति प्रेम से चूते पयोधर से,
प्रभु को पय सानन्द चित्त पिलाया ।।७२।।

मुख चूमती ऊमती झूमती थी,
वह दिव्य दशा नहीं जाती कही ।
छबि सिन्धु की रूप सुमाधुरी को,
अनिमेष दृगों से निहार रही ।
यदुनंदन के नयनाश्रुओं में,
उसकी भवखेद की राशि बही ।
मानो साधन के फल को विधि ने,
किया लोचन गोचर आज सही ।।७३।।

जैसे रामभद्र माता कौशल्या की गोद बैठ,
उनके शुभांचल में दिव्य सुख पाये हैं ।
जैसे रघुनंदन पधार शबरी के गेह,
मातु मानि मांगि मांगि मूल फल खाये हैं ।
जैसे यशोदा के यहाँ खाये दधि नवनीत,
देवकी के हर्ष मंजु कलिका बिकसाये हैं ।
वैसे पुत्र भावना से भावित कृपानिधान,
सुलभा के पास सहुलास चले आये हैं ।।७४।।

पाकर कुछ चेतना तुरन्त चेतनाघन से,
सहसा निज सन्मुख सतृष्ण दृष्टि से निहार ।
देखा लेखाधीश[१] शीश मौलि[२] लालितांघ्रिपद्म,[३]
पद्माप्रिय शांतिसद्म खडे देवकी कुमार ।

---

१. इन्द्र २. मुकुट ३. चरण कमल

मंद मुसुकान द्वारा भक्त चित्त चोरते से,
"गिरिधर" के ईश निखिल लोक सुषमा शृंगार ।
तात सचराचर के शुद्ध पूर्ण ब्रह्म आज,
सुलभा से चाहते मनोज्ञ माता का दुलार ।।७५।।

शीश मोर मुकुट कमलमुख में लटकि,
कारे कारे घुँघरारे केशों के छटान की ।
द्युति अपहरती शरद शर्वरीश[१] घेरी,
नवनील नीरधर सुघन घटान की ।
अरुण अधर पर सित[२] शीत[३] रश्मि[४] जैसी
मुनि मनहारि शोभा मंद मुसुकान की ।
गोल सुकपोल पर कुंडल लसत लोल,
लोचन कमल लोनि छबि भगवान की ।।७६।।

हृदय विशाल बनमाल भव्य बाहु दंड,
मुनि मन मोहै नाभि करुणानिधान की ।
केहरी सुकटितट ता पै लसै पीतपट,
श्यामल शरीर सीमा सकल कलान की ।
अरुण चरण सरसिज नख चन्द्रकांति,
अतिथि समान जो सदैव भक्त ध्यान की ।
अंग अंग प्रति वारि कोटिक मनोज जाके
"गिरिधर" मन बसे झाँकी भगवान् की ।।७७।।

बार बार मुख चन्द्रको, अपलक दृष्टि निहार ।
नैन सलिल से कृष्ण के पद पाथोज पखार ।।७८।।

पेखि पतित पावन प्राण से प्यारे पाहुने को,
पलक पावडों के द्वारा लाई भवनद्वार से ।
दिए दिव्य आसन गरुडासन को पखारे पद,
पूजे पुरुषोत्तम को षोडशोपचार से ।
वसुदेव नंदन को तुष्ट किया भामिनी ने,
भक्ति भावना सुप्रेम अश्रु उपहार से ।
खीझते चरित्र भ्रष्टता पाखण्ड छल से प्रभु,
रीझते पुनीत प्रेम भक्ति सदाचार से ।।७९।।

---

१. चन्द्रमा २. श्वेत ३. शीतल ४. किरण

चूमके हुलास भरी प्रभुका मुखारविंद,
बोली देव ! जनों के तुम प्राण से भी प्यारे हो ।
प्यारे संत मुनिजन के कवियों के आधार एक,
बड़े भाग मेरी टूटी कुटी में पधारे हो ।
धारे नरदेह औ संहारे दुष्ट दानवों को,
गणिका अजामिल आदि पतितों को तारे हो ।
तारे नैन के हो तुम वसुदेव देवकी के,
यशोदा के दुलारे और सुलभा के सहारे हो ।।८०।।

बोले भगवान् तेरे मृदुल हृदन्तर में,
भाग्यवश मेरी भव्य भक्ति भावना जगी ।
तेरी चित्तवृत्ति मेरे पावन पदारविंद,
प्रेम मकरंद से सदैव रहती पगी ।
ठुकराके आया मैं निमन्त्रण नृप सुयोधन का,
तेरी भक्ति निर्मला ने मेरी मति को ठगी ।
देर मत लगाओ लावो रूखा सूखा शाक पात,
सत्य कहूँ काकी मुझे बड़ी भूख है लगी ।।८१।।

सुने सुन्दर बैन सरोरुह नैन के,
आनन्द प्रेम प्रफुल्लित छाती ।
लायी उठा कदली के पड़े फल,
प्रीति की रीत कहा कही जाती ।
खोया विवेक औ धोए दृगश्रु से,
सारे फलों को हिये हरसाती ।
डारती है कदली महि पे,
छिलका सुखसे प्रभु को है खिलाती ।।८२।।

ग्रास बड़े बड़े देत मुकुन्द को,
बार हि बार उन्हें पुचकारती ।
बारहि बार मुखाम्बुज चूमती,
केशव को अनिमेष निहारती ।
डारती है छिलका मुख में,
कदली दल भूतल ऊपर पारती ।
माधव की जनवत्सलता यह,
आवत ध्यान हरैं जन आरती ।।८३।।

फल सार को डार महीतल पै,
छिलका प्रभुको वो खिला रही थी ।
शुचि शीतल निर्मल जाह्नवी का,
जल दोने में ले के पिला रही थी ।
व्यजनीकृत[1] अंचल ही अपना,
प्रभु पै भरी मोद डुला रही थी ।
दृग द्वार से आन के सांवली मूरति,
मानस में बिठला रही थी ॥८४॥

उस पावन प्रेम-पयोनिधि का,
यदुनाथ भी थाह न पा रहे थे ।
ब्रजनंदन पें सुरनंदन की,
कुसुमावलियाँ बरसा रहे थे ।
लख भामिनी भाव अलौकिकता ।
प्रभु भी नहीं फूले समा रहे थे ।
छिलके को सुधा सम मान सराह के,
प्रीति समेत वे खा रहे थे ॥८५॥

प्रेम में विभोर सुलभा के हस्त द्वारा मिला,
केले का छिलका जो सब प्रकार था असार ।
वही कृष्णचन्द्र की मनोज दृष्टि में था बना,
भावना के कारण स्वादप्रद सोमसुधासार ।
'गिरिधर' मुदित मन पुनः पुनः स्मरण कर,
धन्य सुलभा का कृष्णचन्द्र में था मातृप्यार ।
प्रभु को भी मिला आज अद्वितीय रत्न जैसा,
सुलभा से भावनामय मंजु काकी का दुलार ॥८६॥

इधर सुलभा के भावपूर्ण स्नेह सरिता में,
डूबे हुए दिव्य सुख छान रहे भगवान् ।
कृष्ण तेजःपराभूत मूर्छा गत सभासद,
जगे उधर सहसा उठ बैठे सभी सावधान ।

---

१. पंखे के समान बनाये हुए ।

चौके चकपके चकित देखते अन्योन्य को,
सुयोधन तो हुआ जैसे मध्यदिवस हरिणयान[1] ।
दशा सबकी बिलोक रोक प्रेम धीरज धर
धर्मसार गर्भित गिरा बोले श्री विदुर सुजान ।।८७।।

भैया धृतराष्ट्र ! वत्सनृपति सुयोधन !
भीष्म ! द्रोण ! कर्ण ! आदि सभी सुने दत्तावधान।
संधि प्रस्ताव मिस कृपा करने के हेतु,
हास्तिनपुर आये दूत बनके कृपानिधान ।
निर्गुण निरंजन निर्लेप निर्विकार नित्य,
नेति नेति कह के वेद करते जिनका नित्य गान ।
काकपक्षधारी, भक्त मनोबनचारी,
हितकारी पाण्डवों के वही भक्तवत्सल भगवान् ।।८८।।

गोपीचीरहारी जिन्हें कहते तुम उन्होंने,
वस्त्रहरण मिस गोपी माया आवरण चुराया है ।
आत्माराम ने निजात्म भूत गोपियों के साथ,
रासलीला करके कामदर्प को नसाया है ।
दावपान शैल धरण आदि लीलाओं के द्वारा,
विषय विकार नाश प्रक्रिया दर्शाया है ।
कालियके फल पे ब्रजनारियों के थन पे,
और "गिरिधर" के मन पे नृत्य उसी का सुहाया है ।।८९।।

भावुकों की दृष्टि में मधुर मनोज्ञ मूर्ति,
राक्षसों के सामने है कालसे भी अति कराल ।
बंधे जो यशोदा के करसे उलूखलमें,
सके बांध तुम क्या उन निहथ्थे को मनुजपाल !
जिनके संकल्पों से निमिषमें सृष्टि लय होता है,
निखिल ब्रह्माण्डों के जो ईश कालके भी काल ।
समधी तुम्हारे वही पाण्डवों के पक्षधर,
करुणा निधान कृष्ण भगवान् नंदलाल ।।९०।।

---

१. चन्द्रमा

अवधूत पूज्य दूतभूत उस नरोत्तमको,
कहके कठोर कटुबचन ठुकराये तुम ।
धर्मभीरु पाण्डवों को राज्यभ्रष्ट करके,
निर्दयता क्रूरभाव द्वारा अधिक सताये तुम ।
मान जावो मत बनो कलंक आज कुरुकुलका,
मिलगा स्वराज्य यदि मुकुन्द पद ध्याये तुम ।
आये संधि हेतु करुणा निकेत तेरे धाम,
श्याम पूर्ण काम पै उन्हें न जान पाये तुम ।।६१।।

कालपाशबद्ध श्रीमदान्ध बोला कुरूराज,
दासी सुत, भाषण की अपेक्षा नहीं है आज ।
अर्धचन्द्र द्वारा इसे बाहर निकालो,
यह कुरुकुल कलंक राजनीति का बताता राज ।
भैय्या को नवा शीश चले प्रमुदित विदुर,
जान भावि पतनशील कुरुराज का समाज ।
रावण से तिरस्कृत विभीषण जैसी हुई दशा,
अशरण के शरण तो है एकमात्र ब्रजराज ।।६२।।

जिनके पद पंकज के ध्यान में तल्लीन शिव,
उन्हींके श्री चरणों में सप्रेम सिर नवाऊँगा ।
शबरी सुखदाता जो विभीषण के त्राता कुब्जा,
भाग्य के विधाता उनकी शरण में ही जाऊँगा।
द्रौपदी के भैय्या भक्तकष्ट के हरैय्या,
उन कुँवर कन्हैया को ही आरति सुनाउँगा ।
प्यासे इन लोचनों को आज सानुराग कृष्ण -
चन्द्र मुखचन्द्रका चकोर मैं बनाउँगा ।।६३।।

आये विदुर द्वार दिव्य स्यंदन निहार देखे,
सुलभाकी गोद बैठे कृष्ण चक्रधर हैं ।
भ्रुकुटी है विकट शशांकसा मुखारविंद,
कुंडल कपोल लोल अंग सब सुघर हैं ।

---

१. गला

विद्युत प्रभा सा लहराता कटि पीत पट,
लम्ब बाहु दंड भृत्य संकट के हर हैं ।
श्याम ताम रस श्याम श्यामा श्याम वामा कर,
आप्तकाम छिलका खाते सत्यभामावर हैं ॥६४॥

नैन नेह नीरभर बोले यों वचन विदुर,
अरे देवि ! आज तेरा चित्त है कहाँ अहा !!!
सार को महि पै डार छिलका प्रभु को खिलाती,
प्रेम से विभोर होकर किया व्यतिक्रम[1] महा ।
प्रियतम के बचन सुन खिलाने लगी रंभा फल,
डारे छिलके भूमि पर बिहंसी तब हरि ने कहा ।
काका छेड़ काकी को किया है रस भंग तूने,
छिलके जैसा स्वाद इस कदली में नहीं रहा ॥६५॥

बोली मुख नीचीकर पतिसे सीमन्तिनी वह,
सारभूत वस्तु को तो जग ही अपनाता है ।
अपनाते केवल असार को कृपानिधान,
स्वयं सारहीन जग असार ठुकराता है ।
जो भी इस जग में नितान्त ठुकराया जाता,
नंदके कुमार को असार वही भाता है ।
भूल से खिलाया पर इच्छा से इन्हीं के नाथ,
कौन जाने इनका मेरा कैसा मधुर नाता है ॥६६॥

होकर भी दूषण वह भुवन विभूषण है,
यदुवंश भूषणने जिसे है किया अंगिकार ।
भूषण भी दूषण के रूप में प्रतीत होता,
जिसे किया सर्वथा मुकुन्दजु ने अस्वीकार ।
जिसकी निज सत्ता से संसार सा बिराजता है,
दुःख का आगार भी संसार नित्य निरासार ।
"गिरिधर" असार भी संसार हुआ नाथ पाके
श्याम को अनाथ नाथ है ये देवकी-कुमार ॥६७॥

---

१. अनादर अथवा अपराध

मेरी अन्तरंगता की एक साक्षिणी है यह,
सरित भावना की मंजु मूर्ति करुणा की है ।
मूर्तिमति श्रद्धा मेरी भक्ति की निधानभुता,
साधना की पूंजी कुंज सकल कलाकी है ।
इसने स्निग्ध दृष्टि द्वारा भावना निगूढ मेरी,
मानस में बार बार बांकी झाँकी झाँकी है ।
कहते हैं प्रेम में विनोद भावना में हरि,
काका से करोड़ों गुनी चतुर मेरी काकी है ।।९८।।

पत्र पुष्प फल जल जो भी भक्ति भावना से
श्रद्धा के सहित मेरे चरणों में चढ़ाता है ।
होकर साकार रूप करता हूँ स्वीकार उसे,
पूत भावना का ही समर्पण मुझे भाता है ।
भावका हूँ भूखा मैं समर्पित शुद्ध धारणा से,
कालकूट मेरे लिए अमृत बन जाता है ।
मैं हूँ निर्लेप निरपेक्ष मुक्त गुणातीत,
भक्तों से तो मेरा एक प्रेम का ही नाता है ।।९९।।

अगम अगाध भववारिधि से तरने को दृढ,
विराग युक्त ज्ञान सलिल यान के समान ।
किन्तु उसे सर्वदा संचालित करने के लिए,
परम विशुद्ध प्रेम कर्णधार है प्रधान ।
प्रेम बिना थोथे सब जप तप व्रत अनुष्ठान,
प्रेमजन जीवनधन प्रेम ही शाश्वत निधान ।
प्रेम ही है माध्यम दिव्य मेरे प्रागट्य का भी,
''गिरिधर'' के हेतु प्रेम सर्वदा है जीवनप्राण ।।१००।।

रोक यदुनाथ को बिहसी बैन काकी बोली,
छोड़ो इन निरसों को कितना समझाओगे ?
लीलाधर ! ज्ञानियों की होती है विचित्र लीला,
इनके क्रमका तो पार तुम भी नहीं पाओगे ।
इनके तर्कवाद के चपेटे में कृपानिधान,
''गिरिधर'' मृदु हृदय की सरसता गवाओगे ।
अंचलकी ओट कान्ह पास कानमें यूँ बोली,
सत्य सत्य कहो लाला ! और कुछ खाओगे ? ।।१०१।।

सम्मति मूक बिलोकी मुकुन्दकी,
शाक अलोनेको ले तब आई ।
गोद बिठाय के फूँक सप्रेम सो,
माधवको जननी ज्यों खिलाई ।
भावसे तृप्त किये जगदीश को,
शीतल जाह्नवी नीर पिलाई ।
अंचल से मुख पोंछ रही,
पद पंकज में प्रभुके लपटाई ।।१०२।।

काकी औ भतीजेका देख पारस्परिक प्रेम,
भाव मुग्ध विदुर कुछ क्षण के लिए रहे मौन।
बोले हे अनाथ नाथ ! मेरे आज भाग खुले,
करुणाकर स्वयं ही पधारे दीन के यों भौन[1]।
प्रार्थना मैं करूँ एक भक्तवश्य कृपासिंधु,
दम्पत्ति के उरालयसे न करो कदापि गौन[2] ।
साँवरे सलोने लोने लाल नंद जसोदा के,
वसुदेव नन्दन मुकुन्द राधिका के रौन[3] ।।१०३।।

बानी नित्य आपकी सुकीर्ति गाथा गाया करें,
माधव मुखचन्द्र के चकोर दृग हमारे हों ।
कान सदा सुने सरस लीला तुम्हारी देव,
कर तव पद पद्मपूजा दिव्य व्रत धारे हों ।
शीशनित्य नमे तेरे पदकंज में मुकुन्द,
"गिरिधर" के हित तेरे भक्त ही सहारे हों ।
जहाँ जहाँ जन्में हम पूर्वकर्म अनुसार,
वहाँ वहाँ नाथ नित्य परिकर तुम्हारे हों ।।१०४।।

विनय यूँ सुनाके भरे सलिल विलोचन युग,
गहे पद कंज अंक प्रभुको बिठलाये हैं ।
भावुक विदुर के सुधासाने बर बैन सुनी,
कृपा सिंधु लोचनमें नीर भरी आये हैं ।

१. भवन २. गमन ३. र

कृपाकंद ब्रजचन्द आनंदकंद आनंद में,
उमगि करकंज से उठाय उर लाये हैं ।
मानो नील नीरद मिलत श्वेत पंकज से,
"गिरिधर" यह झाँकी देख अनुपम सुख पाये हैं ।।१०५।।

कर जोड़ फिर दंपति मुदित प्रभु से विनय करने लगे,
गद्‌गद् हुआ कल कंठ उनका सरस बचन सुधा पगे ।
गीता गुरो आनन्दसिंधो नाथ यह वर दीजिए,
संतत हमारे मन बिपिनमें आप विहरण कीजिए ।।१०६।।

कह एवमस्तु मुकुन्दने संतोष दम्पति को दिया,
आदेश ले प्रस्थान पाण्डव शिबिर को प्रमुदित किया।
इस ललितगाथा से पुनः शुभ शांति कृष्णा को दिया,
गीता निदेशक का कथा रस दास "गिरिधर" ने पिया ।।१०७।।

हे मुकुन्द करुणानिधे, कृष्णचन्द्र घनश्याम ।
"गिरिधर" मानस भवनमें, करो सदा विश्राम ।।१०८।।

।। इति ।।

